Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received: 27/April/2023 IJRAW: 2023; 2(5):173-175 Accepted: 29/May/2023

प्राचीनकाल में आश्रम व्यवस्था के सन्दर्भ में अवलोकन

*[1]डॉ0 अनिल कुमार यादव

*[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व विभाग पी0जी0 कालेज, पट्टी, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य प्रचीन भारत में आश्रम व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करना है क्योंकि समाजिक जीवन को संचालित करने के लिए आश्रम व्यवस्था का जानना आवश्यक है। इससे व्यक्ति में नैतिकता, सद्भावना और धर्म का विकास होता है और अपने इन्हीं गुणों से लोगों को प्रभावित करता है। अतः छात्र/छात्राओं को प्राचीन आश्रम व्यवस्था को सही जानकारी प्राप्त हो सके।

मुख्य शब्दः आश्रम, मनु, महाभारत, गीता, स्मृति।

प्रस्तावना

हिन्दू विचारकों ने मानव जीवन को समग्रता पूर्वक व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए उसे आश्रमों के अन्तर्गत विभाजित किया गया था। दूसरे शब्दों में ये व्यक्ति के विकास और उसके लक्ष्य–मोक्ष की प्राप्ति के बीच व्यवस्था बनाये रखने के लिए विभक्त किए गए हैं, इन्हें आश्रम व्यवस्था कहते हैं। [1] इन विचारकों की दृष्टि में जीवन में परिश्रम, कर्तव्य परायणता, बौद्धिकता, धार्मिकता और अध्यात्मिकता का योग था, इसलिए आश्रम व्यवस्था में जीवन की व्याख्या की गई है।

'आश्रम' शब्द की उत्पत्ति 'श्रम्' धातु से है जिसका तात्पर्य है श्रम या परिश्रम या प्रयास करना। इस प्रकार आश्रम वे स्थान हैं, जहाँ प्रयास किया जाए। मूलतः आश्रम जीवन की यात्रा में एक विश्राम स्थल का कार्य करते हैं। [2] जहाँ आगे की यात्रा के लिए तैयारी की जाती है। जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। प्रभु ने मोक्ष प्राप्ति की यात्रा में आश्रमों को विश्राम स्थान बताया है। [3] आश्रमों के माध्यम से व्यक्ति को समाज के साथ सम्बद्ध कर उसकी व्यवस्था तथा संचालन में सहायता प्रदान करते हैं। एक ओर जहाँ मानव आश्रमों के माध्यम से जीवन में पुरुषार्थों के उपयोग करने का मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है तो दूसरी ओर व्यवहार में वह समाज के प्रति इनके अनुसार जीवन यापन करता हुआ अपने कर्तव्यों को पूरा करता है। प्रत्येक आश्रम जीवन की एक अवस्था है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक निश्चित अवधि तक प्रशिक्षण प्राप्त करता है। महाभारत में वेद–व्यास ने चारों आश्रमों को ब्रह्मलोक पहुंचने के मार्ग में चार सोपान निरूपित किया है। [4]

प्राचीन भारत में आश्रम व्यवस्था के सन्दर्भ में मतभेद दिखाई पड़ता है। रिजडेविड्स का मानना है कि आश्रमों का प्रचलन बुद्ध के बाद अथवा त्रिपिटकों की रचना के पश्चात हुआ होगा क्योंकि इनमें उनका उल्लेख नहीं मिलता है। [5] परन्तु यह मत असंगत लगता है क्योंकि उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में हम आश्रमों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण, तैतीरीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण आदि में इनका वर्णन है। [6] जाबालोपनिषद् में हम सर्वप्रथम चारों आश्रमों का उल्लेख प्राप्त करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आश्रमों की कल्पना उपनिषद काल में ही हो चुकी थी किन्तु सूत्रकाल तक आते–आते यह व्यवस्था समाज में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गयी। स्मृतिकाल में विभिन्न आश्रमों के विधि–विधान निर्धारित किये गये। प्रारम्भ में मात्र दो आश्रम थे ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ। तत्पश्चात वानप्रस्थ तथा अन्तोगत्वा सन्यास आश्रम का विधान किया गया होगा। सन्यास की उत्पत्ति निश्चयतः अवैदिक श्रमण विचारधारा के प्रभाव से हुई थी। [7] सूत्रकाल तक समाज में आश्रम व्यवस्था पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो चुकी थी। महाभारत में तथा पुराणों में आश्रम व्यवस्था का उद्भव ब्रह्म से मानकर इसे दैवी उत्पत्ति बताई गई है। जिससे लोगों की रुचि उसे स्वीकार करने में हो न कि अस्वीकार करने में।[8] पुराणों में वर्ण व्यवस्था की भांति आश्रम व्यवस्था को भी देवीद्भूत कहा गया है–

ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाक्षमान्।
गृहस्थों ब्रह्मचारित्वं वानप्रस्थं सभिक्षुकम्।।

वायु [9] एवं ब्रह्माण्ड [10] पुराणों में आश्रम व्यवस्था को सामाजिक संतुलन का आधार बताते हुए उसका संश्रय स्थान विष्णु को स्वीकार किया गया है। पुराणों में वर्णित है कि आश्रमों का चिन्तन इसलिए किया गया कि समाज के विभिन्न सदस्य अपने कर्मनिष्ठा पूर्वक संपादित कर सके। आश्रम धर्म का पालन करने वालों को पुण्य लोक की प्राप्ति होती थी। छांदोग्य उपनिषद में इसका पालन न करने वाले अथवा तिरस्कार करने वाले यातना के भागी होते थे और उन्हें नरक की प्राप्ति होती थी। [11]

जीवन की गुणात्मकता के आधार पर कई भागों में विभाजित कर आश्रम की प्रतिष्ठा को बढ़ाया गया है। प्रारम्भ में आश्रमों की संख्या तीन थी, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास को एक ही आश्रम के साथ रखा गया था, क्योंकि दोनों का आधार अध्यात्म था

*Corresponding Author: डॉ0 अनिल कुमार यादव

और लक्ष्य की खोज मोक्ष। मनु ने इन तीनों आश्रमों का वर्णन एक स्थान पर किया है किन्तु बाद में मनु ने ही कहा कि सौ वर्ष के चारों आश्रमों को पच्चीस–पच्चीस वर्ष के चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। [12] गौतम, आपस्तम्ब, विष्णु, वशिष्ठ आदि शास्त्रकारों ने भी चार आश्रमों का वर्णन किया है–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक (अर्थात यति/सन्यासी) आश्रम व्यवस्था का मूल आधार सामाजिक व्यवस्था रही है। सभी आश्रमों में गृहस्थ आश्रम की अधिक महत्ता रही है क्योंकि मानव जीवन के विभिन्न कर्तव्यों का पालन एवं दायित्व का निर्वहन इसी आश्रम में करता है जो सबमें कठिन मार्ग होता है।

वास्तव में आश्रम और पुरुषार्थ का भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पुरुषार्थ का पूर्णरूप से क्रियान्वयन आश्रम के माध्यम से होता था। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ जीवन के आधार स्तम्भ थे, जिनके आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता था और उनकी सफलता आश्रम पर ही निर्भर करती थी। पुरुषार्थ की अभिव्यक्ति आश्रम में होती रही है।

आश्रम के प्रकार

भारतीय धर्मशास्त्र मानव की आयु सौ मानते है तथा प्रत्येक आश्रम के विभिन्न पच्चीस–पच्चीस वर्ष की अवधि निर्धारित करते हैं। विभिन्न आश्रम तथा उनके दौरान पालन किये जाने वाले आचारों का विवरण निम्न प्रकार से है:–

1. ब्रह्मचर्य आश्रम

यह प्रथम आश्रम है। ब्रह्मचर्य दो शब्दों से बना है: बह्म+चर्य, ब्रह्म का अर्थ 'महान' और चर्म का अर्थ है– विचरण करना अतः ब्रह्मचर्य का अर्थ है, महान मार्ग पर विचरण करना। ब्रह्मचर्य का दूसरा अर्थ है– 'वेद मार्ग पर चलना।' यह विद्याध्ययन का काल है जिसका प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता है। उपनयन संस्कार बालक की शिक्षा आरम्भ करने का संस्कार था। ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश ब्राह्मण वर्ण के बालक के लिए 8 वर्ष की आयु में, क्षत्रिय वर्ण के बालक के लिए 11 वर्ष की आयु में तथा वैश्य वर्ण के बालक के लिए 12 वर्ष की आयु में सम्पन्न किये जाने का विधान मिलता है। प्रत्येक ब्रह्मचारी को जनेऊ, मेखला एवं दण्ड धारण करना पड़ता था। प्रत्येक वर्ण के लिए अलग–अलग मेखला निर्धारित थी। ब्राह्मण ब्रह्मचारी मूंज की, क्षत्रिय लौह खंड से युक्त मूंज की तथा वैश्य ऊन की मेखला धारण करता था। ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर वेदाध्ययन करना पड़ता था। उसकी सभी क्रियाएं धर्म के अनुकूल होती थी। विद्यार्थी गुरु की निष्ठापूर्वक सेवा करता था तथा भिक्षावृत्ति द्वारा अपना निर्वाह करता था। वह सूर्योदय के पूर्व उठता था, दिन में तीन बार स्नान करता था तथा प्रातः एवं सायंकाल संध्या करता था। वह दो बार भोजन ग्रहण करता था। उसके लिए नृत्य, गान, सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग, स्त्री की ओर देखना, उसकी चिन्ता करना तथा उसका स्पर्श सब कुछ वर्जित था। वह सदाचार एवं सच्चरित्रता का पालन करता था।

महाभारत में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मचारी का जीवन सभी धर्मों में श्रेष्ठ तथा आदर युक्त होता है जिसका अनुसरण करने वाले परमपद को प्राप्त करते हैं। [13] मत्स्यपुराण के अनुसार इस आश्रम की परमसिद्धि विद्याभ्यास है। [14] ब्रह्मचारी का दूसरा पुनीत कर्तव्य गुरु–सेवा आख्यात है। [15] गुरु के आदेश के अनुपालनार्थ तथा उनके कार्यार्थ ब्रह्मचारी को सदैव तत्पर रहना चाहिए।[16] अर्थशास्त्र में ब्रह्मचारी के कर्तव्य वेदाध्ययन, अग्नि अभिषेक, भिक्षावृत्ति तथा उसके अभाव में गुरुपुत्र अथवा ज्येष्ठ ब्रह्मचारी की सेवा करना बताया गया है। [17] भिक्षावृत्ति का विधान इस उद्देश्य से किया गया था कि विद्यार्थी में नम्रता का भाव जाग्रत हो सके। गौतम गृहसूत्र से ज्ञात होता है कि सूत्रकाल में स्त्रियां भी यज्ञोपवीत धारण करती थी। [18]

रामायण में समावर्तन संस्कार के बाद स्नातक उपाधि से विभूषित छात्रों को तीन भागों का वर्णन मिलता है–

1. **विद्याः** स्नातक (जिसने विद्याध्ययन पूरा कर लिया हो, किन्तु ब्रह्मचारी के निमित्त विहित व्रत–नियमादि को न पूरा किया हो।
2. **व्रतः** स्नातक जिसने ब्रह्मचारी के लिए नियत व्रत नियम पूर्ण कर लिया है पर अध्ययन क्रम को पूरा न किया।
3. **विद्याः** व्रत–स्नातक–जो व्रत–नियम आदि के साथ–साथ अध्ययन को पूरा कर लिया हो।

विद्यार्थियों को उपकुर्वाण और नैष्ठिक दो श्रेणियों का वर्णन मिलता है। उपकुर्वाण विद्यार्थी 25 वर्ष तक गुरु के आश्रम में विद्याध्ययन करने के पश्चात विवाह करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इसके विपरीत नैष्ठिक ब्रह्मचारी जीवन पर्यन्त अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य–व्रत एवं अध्ययन–अध्यापन करता था। इन्हें 'अन्तेवासी' कहा जाता था। मनुस्मृति में कहा गया है कि ऐसे व्यक्ति ब्रह्मलोक में जाते हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार इनका पुनर्जन्म नहीं होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय 'समावर्तन' नामक संस्कार सम्पन्न होता था। इस आश्रम धर्म के अनुशासन में परिपक्व होकर अन्य आश्रमों में अर्थ, काम, मोक्ष जैसे पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए तैयार हो जाता था। वह इसी काल में धर्म साधना द्वारा पंच ऋणों से निवृत्ति पाने का संकल्प लेता था।

2. गृहस्थ आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद मानव गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था जिसकी अवधि 25 वर्ष से 50 वर्ष के लगभग तक मानी गयी है। इस आश्रम में पति और पत्नी एक दूसरे के प्रति सहयुक्त होकर धर्मानुसार व्यवहार करते थे। व्यास का कहना है कि गृहस्थ धर्म का अनुसरण करने वाले को अपने गृह में ही कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, हरिद्वार और केदार तीर्थ की प्राप्ति होती है। जिनमें उसके सभी पाप धुल जाते हैं। गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों का आधार माना गया है। इसी आश्रम में रहकर मानव त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ एवं काम का एक साथ उपयोग करते हुए मोक्ष प्राप्ति के योग्य बनता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस प्रकार सभी प्राणी वायु के सहारे जीवित रहते हैं उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम के सहारे जीवन प्राप्त करते हैं। [19] तीनों आश्रमों का भारवहन करने के कारण यह श्रेष्ठ है। [20] जिस प्रकार सभी छोटी–छोटी नदियां सागर में आश्रय पाती हैं उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ में आश्रय पाते हैं। [21]

अर्थशास्त्र [22] में गृहस्थ के निम्नलिखित कर्तव्य बताये गये हैं। अपने धर्म के अनुकूल जीविकोपार्जन करना, विधिपूर्वक विवाह करना, अपनी विवाहिता पत्नी से ही सम्पर्क रखना, देवताओं, पितरों, भृत्यों आदि को खिलाने के बाद बचे हुए अन्न को ग्रहण करना। मनुस्मृति में गृहस्थ के दस धर्मों का वर्णन मिलता है:– धृति, क्षमा, अस्तेय, दम, शौच, इन्द्रिय, निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा क्रोध न करना। [23] यथाशक्ति दान देना तथा आये हुए अतिथि का सत्कार करना भी उसके कर्तव्य थे। रामायण [24] से पता चलता है कि चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। इस आश्रम में रहकर मनुष्य पितृ–ऋण, देव ऋण तथा ऋषि ऋण आदि से मुक्त होता है। [25]शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इस आश्रम में गृहस्थ पंच महायज्ञों (ब्रह्म यज्ञ, पितृ यज्ञ, देव यज्ञ, नृ–यज्ञ एवं भूत यज्ञ) का विधान किया गया है। [26] महाभारत में गृहस्थ आश्रम को सिद्धक्षेत्र एवं पुण्याश्रम से अभिहित किया गया है। इसमें रहकर कर्तव्यों एवं दायित्वों को पूरा करना श्रेष्ठ धर्म घोषित किया गया है। इसी आश्रम पर अधिकांश जीवों का जीवन निर्भर है, अतः यह परम श्रेष्ठ है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष अर्थात् सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति इस आश्रम में संभव है। मनुस्मृति के अनुसार जिस प्रकार वायु का आश्रय लेकर सभी जीवों का जीवन चलता है, उसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेते हैं। [27] गृहस्थ को धर्मानुकूल साधनों से धनार्जन करना चाहिए उसे मधुर वचनों से यथाशक्ति अतिथि–सत्कार करना चाहिए। उसे पितृतर्पण एवं यज्ञ करना

चाहिए। इसी प्रकार पुराणों में पंच महायज्ञों, देवयज्ञों, ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और भूत यज्ञ का संपादन तथा स्वाध्याय भी गृहस्थ का परमकर्तव्य बताया गया है। इन यज्ञों के द्वारा वह गृहस्थ के रूप में परिवार और समाज के प्रति अपने सभी कर्तव्यों को पूरा करता था।

3. वानप्रस्थ आश्रम

गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को भली–भांति पूरा कर लेने के पश्चात मनुष्य वानप्रस्थ में प्रवेश करता था। वह अपने कुल, गृह तथा ग्राम को छोड़कर वन में जाता तथा वहां निवास करते हुए अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित करता था। मनुस्मृति में वर्णित है कि जब मानव के सिर के बाल सफेद होने लगे उसे शरीर पर झुर्रियां पड़ जायें तथा वह पौत्रों का मुंह देख लें तब उसे वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए। इसका उद्देश्य विधा, तपस्या की वृद्धि एवं शरीर की शुद्धि बताया गया है। [28] इसी को वैखानस मार्ग भी कहा गया है।

वानप्रस्थी प्रकृति प्रदत्त सभी वस्तुओं की सुरक्षा में विश्वास रखता था। इस आश्रम में रहकर वह कंदमूल फल का सेवन कर जीवन निर्वाह करता था। कम से कम वस्त्रों का उपयोग करता था। भूमि–शयन, ऐन्द्रिय, उदासीनता तथा आत्म–नियन्त्रण पर उसका विशेष आग्रह होता था। उसे सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखना चाहिए। विष्णुपुराण के अनुसार वानप्रस्थी को आत्यात्मिक उन्नति के लिए सदा तपस्यारत रहना चाहिए तथा नित्य तीन बार स्नान करके तन–मन को शुद्ध करना चाहिए। महाभारत में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य, क्षमा, शौच, वानप्रस्थी के सनातन धर्म होते हैं जिनका पालन करने पर वह स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है। [29] इस प्रकार वानप्रस्थाश्रम में व्यक्ति मुख्य रूप से धर्म और मोक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करता था, अर्थ और काम का इस आश्रम में उसे लिए कोई महत्व नहीं रहता था। वह धीरे–धीरे अपने चित्त को सांसारिक मोह जाल से हटाता है और प्रभु में ध्यान लगाता है।

4. सन्यास आश्रम

वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात व्यक्ति सन्यास आश्रम में प्रवेश करता था अर्थात् वह सांसरिक जीवन का पूर्ण रूप से त्याग करता था। मानव के चतुर्थ आश्रम में 75 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर 100 वर्ष के बीच माना गया है। [30] इस आश्रम का मूल लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना था। इस अवस्था में व्यक्ति पूर्णतया निर्लिप्त होकर अपना मन परमात्मा के चिन्तन में लगाता था। वह जीवन और मृत्यु से उदासीन रहता था, वह अपने पास कुछ भी नहीं रखता था तथा समस्त रागद्वेष, मोहमाया आदि से विरत होकर एकाकी भ्रमण करता था। अपने निर्वाह के लिए वह दिन में मात्र एक बार भिक्षा मांग सकता था। उसे अपनी इन्द्रियों पर कठोर नियंत्रण रखना पड़ता था। इसके लिए समभाव होना, किसी प्राणी से कभी द्वेष न करना तथा काम, क्रोध, लोभादि कुप्रवृत्तियों का पूर्णतया त्याग कर देना अनिवार्य था। याज्ञवल्क्य स्मृति में निर्दिष्ट है कि वह सत्य अस्तेय अक्रोध आदि सदाचार विधायक गुणों का आश्रय करे। इसी तरह पुराणों में वर्णित है कि सन्यासी का दया, क्षमा, अक्रोध, सत्य आदि सद्गुणों का विकास करना चाहिए। वायु ब्रह्माण्ड में सन्यासी के लिए अव्यवाय अर्थात् जितेन्द्रिय होना आवश्यक बताया गया है। मनु ने भी अमरता प्राप्ति के लिए सन्यासी को जितेन्द्रिय होने का निर्देश दिया है। [31] धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा पुराणों में अनेक स्थलों पर स्वल्पहार तथा भिक्षावृत्ति को दोहराया गया है। कौटिल्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सभी आश्रमों में सबके साथ अहिंसा का व्यवहार करना चाहिए और सत्य, पवित्रता आदि गुणों का आचरण करना चाहिए और ईर्ष्या और निर्दयता से बंधना चाहिए। धैर्य से कार्य करना चाहिए और दूसरे के अच्छे गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए।

इस प्रकार आश्रम व्यवस्था का विधान प्राचीन हिन्दू शास्त्रविदों में व्यक्ति तथा समाज दोनों के सर्वांगीण विकास के लिए किया था। व्यक्ति आश्रमों के माध्यम से अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करता है और सामाजिक उत्थान में सन्यासियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी।

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि समाज में मानव को अनुशासित जीवन जीना चाहिए तथा व्यक्ति के अन्दर नैतिकता, धर्म, सद्भावना का विकास होता है। इसमें समाज में मानव एक आदर्श प्रस्तुत करता है जिससे लोग उस आदर्श का पालन करते हैं। जिस प्रकार राम के समाज में एक आदर्श को प्रस्तुत किया गया और वर्तमान में समाज में यह सभी लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सहाय, डॉ0 शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, पृष्ठ 73।
2. The Ashramas are to be regarded as resting places during one's journey on way to liberation which is the final aim of life.–पूर्वोद्वन, पृ0 83
3. प्रभु, पी0एन0–हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, पृ0 83।
4. चतुष्पदी हि निः श्रेणी ब्रहाण्येषा प्रतिष्ठिता। एतां आरूढ़ा निःश्रेणीम् ब्रहालोके महीयते।। शान्तिपर्व 24.2.15
5. डायलाग ऑफ द बुद्ध, खण्ड–1, पृष्ठ 212।
6. ब्रह्मचर्याश्रम समाप्य गृही भवेत्। गृही भूत्वा बनी भवेत् बनी भूत्वा प्रव्रजेत्।।
7. स्टडीज इन द ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म, पृ0 322–23
8. महाभारत, शान्तिपूर्व, 191, 8
9. वायु पुराण, 67,37
10. ब्राह्मण पुराण 3.72.36
11. छान्दोग्य उपनिषद –2–23
12. मनुस्मृति–6.87
13. यदिदं ब्रह्मणों एवं ब्रह्मचर्यं मिदं स्मृतम्। परं तत् सर्वधर्मेभ्यस्तेन यान्ति परांगतिम्।। – शान्ति पर्व
14. स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी– मत्स्यपुराण 40.2
15. शौचाचारव्रतं तत्र कार्य शुश्रूषणं गुरोः – विष्णुपुराण 3.9.2
16. गुरुशुश्रुणं भैक्ष्य विद्यार्थी ब्रह्मचारिणः वायु पुराण 8.774
17. ब्रह्मचारिणस्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारीरिणि वा।–अर्थशास्त्र
18. गृहसूत्र–2.1.19
19. यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।। मनुस्मृति 3/77
20. गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् विभर्ति हि। मनुस्मृति 6/89
21. यथा नदी नदः सर्वे, सागरे यान्ति संस्थितिम्। मनुस्मृति 6/90
22. अर्थशास्त्र 1.3
23. धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।
24. चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्। रामायण 3.106.22
25. ऋणानि त्रीष्यपाकुर्वन् दुहृदः माधुनिर्वहन्। रामायण 3.106.28
26. पंचैव महायज्ञाः तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञ। पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति–शतपथ ब्राह्मण – 11.5.61
27. यथा वायु समात्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। गृहस्थमाश्रिव्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः। मनुस्मृति 7.78
28. विद्या तपोविवृद्धयर्थशरीस्यशुद्धये।
29. ब्रह्मचर्य क्षमा शौचं तस्य धर्मः सनातनः। अनुशासन पर्व 14.1 एवं स विगते प्राणे देवलोके महीयते।।
30. अंगुत्तर निकाय, जिल्द 4 पृ0 278।
31. मनुस्मृति 6.60।